डूब रहा है सूरज फागुन के दोपहर में

प्रफुल्ल कोलख्यान

भीड़ बहुत है मगर मैं अकेला बहुत इस सफर में
क्या फर्क पड़ता है मरें कहीं काशी या मगहर में

जाने क्या बात, तेरी तमन्ना उठती मेरे जिगर में
माँ समझती नहीं कि मैं घुलता हूँ किस फिकर में

महापुरुष नहीं तो, बसा क्यों आकर महानगर में
अन्न-जल नहीं, काँटे बहुत सुराज के नये डगर में

गम महफूज खुशियाँ चढ़ गई उनकी वक्र नजर में
हूँ तो मैं भी लेकिन मेरी जगह नहीं कोई शजर में

अमृत कलश देखो किस तरह उलझा हुआ जहर में
देखो होरी, डूब रहा है सूरज फागुन के दोपहर में